ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(8): 63-64
www.allresearchjournal.com
Received: 01-06-2019
Accepted: 05-07-2019

Pooran Lal Meena
Research Scholar,
Department of History,
University of Delhi, Delhi,
India

Correspondence
Pooran Lal Meena
Research Scholar,
Department of History,
University of Delhi, Delhi,
India

कुषाणों के समय बौद्ध धर्म की स्थिति

Pooran Lal Meena

प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य जो प्राचीन भारत का विशाल साम्राज्य था या कहे कि प्राचीन भारत का सबसे शक्तिशाली सर्वाधिक भू–भाग पर फैला हुआ साम्राज्य था उसकी अवनति के उपरान्त भारत में लम्बे समय तक राजनीतिक एकता तथा स्थिरता का अभाव बना रहा। ऐसे ही अस्थिर माहौल में कुषाण साम्राज्य का शुभारंभ हुआ। कुषाण साम्राज्य में उत्तरी भारत के साथ–साथ उत्तर के कई विदेशी साम्रज्य भी शामिल थे कुषाणों का विशाल साम्राज्य मध्य एशिया तक फैला हुआ था। इनके समय भारत में बौद्ध धर्म का नये तरीके में नई कला के साथ विकास हुआ। प्रसिद्ध कला गंधार कला में बुद्ध की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। कुषाणों में कई महान शासक हुए जिन्होंने बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए अपने–अपने तरीके से अमूल्य योगदान दिया। राजा कनिष्क तो इस दिशा में अर्थात् बौद्ध धर्म के विकास और उन्नति में महान शासक के रूप में विख्यात हुए। कनिष्क के समय में कई विद्वानों को बौद्ध धर्म के विकास के लिए आश्रय प्राप्त हुआ।

मौर्य शासक अशोक की तरह कुषाण शासक कनिष्क को बौद्ध धर्म का महान आश्रयदाता माना जाता है। जिस प्रकार अशोक ने पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति आयोजित की उसी प्रकार कुषाण शासक कनिष्क ने कश्मीर के कुण्डलवन में चौथी बौद्ध संगीति का सफल आयोजन किया। यही नहीं कुषाणों के समय बौद्ध धर्म तिब्बत, चीन और जापान तक फैल गया जैसे मौर्य शासकों के आश्रय से बौद्ध धर्म भारत, श्रीलंका तथा जावा आदि निकटवर्ती देशों में उन्नति पर पहुँचा। एक तरह से अशोक के अधूरे रह गये बौद्ध धर्म के प्रसार के कार्यों को कुषाण शासक कनिष्क ने पूरा कराया। बौद्ध धर्म के प्रसार की बात जब भी होती है तो अशोक के बाद कुषाण शासक कनिष्क का ही नाम आता है इसीलिए बौद्ध ग्रन्थों में उसे द्वितीय अशोक के रूप में सम्मानित किया जाता है। एक ओर कुषाण शासक कनिष्क बौद्ध शाखा महायान को मानते थे तो दूसरी ओर अशोक हीनयान को मानते थे। कनिष्क महान के समय तक्षशिला (वर्तमान पाकिस्तान) मथुरा (वर्तमान उत्तर प्रदेश) तथा कनिष्कपुर, पंजाब में स्थित संघोल में अनेकों कलाकृतियाँ बनी जिन्हें अभी भी देखा जा सकता है।

पंजाब के लुधियाना जिले में स्थित संघोल जिसका उत्खनन आर.एस. बिष्ट के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ था जिसमें उत्खनन के दोरान एक बौद्ध मोनास्ट्री प्राप्त हुई है, यहीं से कनिष्क कालीन भगवान बुद्ध का एक सिर (हैड) उत्खनन में प्राप्त हुआ है।

कनिष्क ने कई बौद्ध बिहारों को बनवाया बौद्ध भिक्षु–भिक्षुणियों के जीविकोपार्जन हेतु संसाधन उपलब्ध कराये भगवान बुद्ध की याद को स्थायित्व देने के लिए बौद्ध स्तूप बनवाये बौद्ध प्रतिमाएँ बनवाकर उन्हें ऊँचे स्थानों पर लगवाया इसी समय सैकड़ों बौद्ध प्रतिमाएँ बनी जिससे बौद्ध धर्मनुयायियों की संख्या में वृद्धि हुई, चौथी बौद्ध संगीति में जो कि कशमीर के कुण्डलवन में आयोजित हुई थी में वसुमित्र, नागार्जुन, अश्वघोष तथा पार्थ जैसे विख्यात विद्वानों ने सिरकत की।

कनिष्क के समय में मूर्तिनिर्माण कार्य में वृद्धि होने से बौद्ध धर्म की महायान शाखा को मानने वालों के लिए उचित और सरल वातावरण चारो ओर बनने लगा, जिसके कारण हीनयान शाखा के अनुयायियों के मुकाबले महायान शाखा के श्रद्धालुओं की संख्या में वृद्धि हुई। इसी समय प्रतिमा पूजन शिरू हो गया, बुद्ध की मूर्तियाँ अब पहले के मुकाबले ज्यादा सुन्दर बनने लगी और मूर्तियों में गंधार कला का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि अन्य धर्म की प्रतिमाएँ भी गंधार कला में बनने लगी। विशेषकर मथुरा में हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों में इसका प्रभाव साफ दिखने लगा।

कुषाण शासक कनिष्क को 78 ई. में प्रारम्भ होने वाले शक संवत् को चलाने वाला भी माना जाता है। वैसे इस शक–संवत् का प्रयोग शक–शासकों ने समान रूप से किया इसी कारण से इसे शक संवत् भी कहा जाता है।[1] डॉ. आर.एस. त्रिपाठी के अनुसार, 78 ई. में चलाये गये शक संवत् को सही माना जा सकता है। इस संवत को उसके उत्तराधिकारियों द्वारा प्रयोग में लाया जाता रहा था, इसी समय उत्तर भारत में हम किसी दूसरे सन को नहीं जानते, कनिष्क के राज्यारोहन की तिथि की गणना इसी संवत से होती है।

ख्वारिज्म (तुर्कमेनिस्तान) से भारत आये अरबी लेखक अलबरूनी ने भी अपनी पुस्तक ''किताब–उल–हिन्द'' में कनिष्क के 78 ई. के शक संवत का उल्लेख किया है।[6] अलबरूनी ने 78 ई. शक संवत के आधार पर गुप्त संवत की तिथि निकाली, अलबरूनी के अनुसार 78 ई. के शक संवत के 241–42, साल बाद गुप्त शासकों का काल शुरू होता है। अतः 78+242=319–20 ई. की तिथि गुप्त संवत के लिए निकलकर आती है। कनिष्क शासक कुजुलकडफिस के देहान्त के समय कनिष्क उस तिथि (78 ई.) से ज्यादा दूर नहीं था ऐसा इसलिए भी कि 80 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद बीमाकडफिस का शासक कुछेक समय का ही रहा होगा।''

यह पूरी तरह सत्य है कि कुषाण काल भारत में मूर्ति निर्माण कला के उच्च कालों में से था, इनके समय गंधार कला विकसित हुई जो भारत के साथ–साथ अन्य देशों जैसे मध्य एशियाई देशों में पहुँचने लगी, मथुरा कला के अच्छे दिन आने लगे और मथुरा कला की मूर्तियाँ गंधार कला में निर्मित होने लगी जो वस्तुतः पारदर्शिता अर्थात् वस्त्रों के अन्दर में शरीर के अंग स्पष्ट दिखते थे के लिए प्रसिद्ध थी। ये मूर्तियाँ सूदूर देशों को भेजी जाने लगी। हालांकि मथुरा में सर्वधर्म सम्भाव बना रहा। अर्थात् सभी धर्मों–ब्राह्मण, बौद्ध, जैन तथा अन्य के अनुयायी रहते थे। बौद्ध परम्परा के अनुसार मथुरा में भी बौद्ध भगवान बुद्ध के चरण पड़े थे शिरूआती समय हीनयानियों की सर्वास्तिवाद शाखा यहाँ थी। पर कुछ समय पश्चात् मथुरा भी महायानियों का अच्छा प्रभाव केन्द्र बन गया।

जैनियों के नेमीनाथ, पार्श्वनाथ का भी संबंध मथुरा से रहा है। उत्तर–वैदिक काल में भी मथुरा का उल्लेख राजनीतिक केन्द्र के रूप में हुआ है। बौद्ध ग्रंथों और आर. एस. विष्ठ के पंजाब के संथोल नामक स्थान पर हुए उत्खननों से तक्षशिला–संथोल–मथुरा तीनो व्यापार–वाणिज्य और गंधार मूर्तिकला के अच्छे केन्द्र रहने के प्रमाण मिले हैं, ये अवशेष पंजाब के संथोल म्यूजियम से सुरक्षित है।

राजस्थान में भरतपुर जिले के नोह से मौर्यकालीन पालिस की हुई एक प्रस्तर–खण्ड प्रतिमा मिली है इससे मथुरा कला की प्राचीनता कुषाण काल से भी पहले अर्थात् मौर्य कला तक जाती है। मौर्यो के समय दो प्रकार की कला दिखाई देती है पहली जो अशोक के स्तंभों पर उत्कीर्ण है जो मुख्यतः राजाश्रय में विकसित हुई। दूसरी यक्ष–यक्षिणी की कला भी थी। कुषाणों के समय भी अनेक यक्ष–याक्षिणी की मूर्तियाँ बनी जो भरतपुर तक फैली हुई मिली है। विशेषकर पंजाब के संथोल की मूर्तियाँ।[7] ये यक्ष–दक्षिणियों की मूर्तियाँ बौद्ध, जैन, ब्राह्मण धर्म में समान रूप से मान्य थी। मौर्यो के समय तो इन यक्ष–यक्षिणियों की मूर्तियों की बहुतायत थी। राजस्थान के जयपुर जिले में विराटनगर में, निर्मित ये यक्ष–यक्षणियों की मूर्तियाँ पंजाब, कौशाम्भी श्रावस्ती, बंगाल, अहिछत्र, साची, सारनाथ आदि स्थानों पर भेजी जाती हैं। मथुरा–करौली के लाल पत्थर से निर्मित की जाती थी।[8] मथुरा करौली के कारीगरों ने पाषाण स्तंभों पर नारी आकृतियों को भी बखूबी उकेरा। कम से कम वस्त्र पहनी योवनियाँ सी दिखने वाली प्रतिमाएँ मथुरा करौली कला की पहचान बन गई जिसकी एक अन्य परिणिति मध्यकाल में खुजराहों के मंदिरों में देखी जा सकती हैं।

संदर्भ

1. त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ एनिसियेन्ट इंडिया, पृ. 224–25
2. चौधरी, एच.सी., प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 171
3. वासुदेव शरण, अग्रवाल, भारतीय कला, पृ. 295–95
4. स्मिथ, वी.ए., ए हिस्ट्री ऑफ फाईनआर्ट इन इंडिया
5. कुमारास्वामी, ए.के., बुद्ध एण्ड दी गोपेल ऑफ बुद्धिज्म
6. सिंह, उपेन्द्र, प्राचीन और प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ. 77
7. शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजेज, पृ. 50
8. कनिघम, एलेकजेण्डर, ए.एस.आई. रिपोर्ट, पृ. 240